अभिनवधारा
ABHINAVDHARA
InternationalJournal of Innovation in Indic Studies

International Journal of Innovation in Indic Studies

ISSN: ISSN: 2583-5149 | Vol-4, Issue-1 | July 2026

आधुनिक काव्यशास्त्रीय विमर्श में अलंकार सिद्धान्त का पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्प्रतिष्ठा

डॉ, मृगांक मलासी
सहायक आचार्य (संस्कृत)
डॉ, शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग
(चमोली) उत्तराखण्ड

शोधसार- भारतीय काव्यशास्त्र की दीर्घ परम्परा में अलंकार सिद्धान्त का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। काव्य की रमणीयता, चमत्कार एवं प्रभावोत्पादकता के प्रमुख साधन के रूप में अलंकारों की स्वीकृति प्राचीन काल से ही रही है। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हुए उसे काव्य-सौन्दर्य का मूल आधार स्वीकार किया, जबकि आचार्य दण्डी ने अलंकारों को काव्य की शोभा-वृद्धि करने वाला तत्व माना। यद्यपि परवर्ती काल में आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त तथा अभिनवगुप्त के रस-विमर्श के प्रभाव से अलंकार की स्वतन्त्र सत्ता कुछ सीमित दिखाई देने लगी, तथापि आधुनिक काव्यशास्त्रीय विमर्श में अलंकार को पुनः केवल बाह्य भूषण न मानकर काव्य की अन्तर्निहित रचनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रमुख चिन्तक आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा को आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

इनके विचारों में काव्यशास्त्र केवल रूढ़ सिद्धान्तों का संग्रह नहीं, अपितु काव्यानुभूति, भाषा-सौन्दर्य एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति का विज्ञान है।

इस दृष्टि से अलंकार केवल शब्द एवं अर्थ की सज्जा नहीं, अपितु कवि की कल्पना, अनुभूति और अर्थ-निर्माण प्रक्रिया का मूल साधन है। प्रस्तुत शोध-पत्र में अलंकार सिद्धान्त की विकास-यात्रा का विवेचन करते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक काव्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में अलंकार पुनः काव्यात्मा के रूप में प्रतिष्ठित होने की क्षमता रखता है।

कुंजी शब्द : अलंकार, काव्यात्मा, भारतीय काव्यशास्त्र, भामह, रेवाप्रसाद द्विवेदी, राधावल्लभ त्रिपाठी, आधुनिक आलोचना, काव्य-सौन्दर्य।

प्रस्तावना – भारतीय साहित्यिक चिन्तन परम्परा अत्यन्त समृद्ध एवं व्यापक रही है। भारतीय आचार्यों ने काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, सौन्दर्य एवं प्रभाव को समझने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। भारतीय काव्यशास्त्र का मूल प्रश्न रहा है कि काव्य की आत्मा क्या है? अथवा किसे काव्य का आत्मतत्त्व कहा जाए? अर्थात् काव्य का वास्तविक जीवन-तत्त्व क्या है? कौन-सा तत्व काव्य को सामान्य वाक्य से भिन्न बनाता है? इसी प्रश्न के समाधान के लिए भारतीय काव्यशास्त्र में विभिन्न सम्प्रदायों का उदय हुआ। किसी ने अलंकार को काव्य की आत्मा माना, किसी ने रीति को, किसी ने ध्वनि को, तो किसी ने रस को।[1]

अलंकार सम्प्रदाय भारतीय काव्यशास्त्र की प्राचीनतम एवं प्रभावशाली परम्पराओं में से एक है। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके पश्चात् दण्डी, उद्भट, रुद्रट आदि आचार्यों ने अलंकार सिद्धान्त को विकसित किया। यद्यपि बाद के आचार्यों ने ध्वनि और रस को काव्य का प्रधान तत्त्व माना, लेकिन उन्होंने भी अलंकार की उपयोगिता को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया।

आधुनिक युग में पश्चिमी साहित्यिक सिद्धान्तों, भाषा-विज्ञान एवं नवीन आलोचनात्मक दृष्टियों के प्रभाव से काव्य के स्वरूप पर पुनर्विचार हुआ। इस प्रक्रिया में यह स्पष्ट हुआ कि अलंकार केवल पारम्परिक अर्थ में "आभूषण" नहीं है, अपितु वह भाषा की सृजनात्मक क्षमता को प्रकट करने वाला माध्यम है। प्रतीक, बिम्ब, मिथक, व्यंग्य और रूपक जैसी आधुनिक काव्य-अभिव्यक्तियाँ मूलतः अलंकारिक प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। इस संदर्भ में रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे आधुनिक संस्कृत विद्वानों का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को केवल ऐतिहासिक विषय न मानकर जीवन्त साहित्यिक चिन्तन के रूप में प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार भारतीय काव्यशास्त्र की अवधारणाएँ

1 विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, सम्पादित संस्करण, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, भूमिका।

आज भी साहित्यिक मूल्यांकन में उपयोगी हैं। अतः वर्तमान शोध का उद्देश्य अलंकार सिद्धान्त को परम्परागत सीमाओं से मुक्त करके आधुनिक काव्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में पुनः स्थापित करना है।

काव्यात्मा की अवधारणा और भारतीय काव्यशास्त्र – भारतीय काव्यशास्त्र में "काव्यात्मा" की खोज एक दीर्घ बौद्धिक परम्परा का परिणाम है। विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से काव्य के मूल तत्त्व को समझाने का प्रयास किया। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रस को कला का परम प्रयोजन माना। उनके अनुसार– 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।'[2] रस सिद्धान्त ने भारतीय साहित्यिक चिन्तन को अत्यन्त प्रभावित किया। परन्तु अलंकारवादी आचार्यों ने यह प्रश्न उठाया कि काव्य की विशेषता केवल भावानुभूति नहीं, अपितु उसकी अभिव्यक्ति की विशिष्टता भी है। आचार्य भामह ने काव्य को अलंकार के आधार पर समझाया। उनके अनुसार अलंकार काव्य को सामान्य कथन से अलग करके सौन्दर्यपूर्ण बनाता है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।'[3] अर्थात् जिस प्रकार आभूषण रहित स्त्री का मुख पूर्ण आकर्षक नहीं लगता, उसी प्रकार अलंकार रहित काव्य भी पूर्ण प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। यहाँ भामह का आशय केवल बाहरी सजावट से नहीं है। उनके लिए अलंकार वह शक्ति है जो काव्य में चमत्कार और सौन्दर्य उत्पन्न करती है।

अलंकार केवल भूषण नहीं अपितु अभिव्यक्ति की शक्ति है। सामान्य रूप से अलंकार शब्द का अर्थ आभूषण लिया जाता है, किन्तु काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। अलंकार वह तत्त्व है जो शब्द और अर्थ में विशेष सौन्दर्य उत्पन्न करता है। आचार्य दण्डी ने *काव्यादर्श* में अलंकारों को काव्य की शोभा का कारण माना। उनके अनुसार काव्य में गुण और अलंकार दोनों मिलकर उसकी प्रभावशीलता को बढ़ाते हैं।[4] आधुनिक दृष्टि से देखा जाए तो अलंकार कवि की कल्पनाशक्ति का परिणाम है। जब कवि किसी सामान्य वस्तु को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत करता है, तब वहाँ अलंकार की सृष्टि होती है। उदाहरणार्थ 'चन्द्रमिव मुखः' यह केवल तुलना नहीं है, अपितु चन्द्रमा के माध्यम से मुख की सौन्दर्यात्मक अनुभूति को व्यक्त करने का प्रयास है। यहाँ उपमा अलंकार केवल सजावट नहीं, अपितु अनुभव को तीव्र करने का माध्यम है।

अलंकार सिद्धान्त की आधुनिक प्रासंगिकता - आधुनिक साहित्य में अलंकारों का स्वरूप परिवर्तित हुआ है। आधुनिक कवि परम्परागत अलंकारों का प्रयोग नवीन अर्थों में करता है। यथा – रूपक – प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, उपमा – नवीन बिम्ब निर्माण, उत्प्रेक्षा - कल्पना का विस्तार, विरोधाभास –

---

2 नाट्यशास्त्रम्, 6.31

3 काव्यालंकार, 1.13

4 दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद

आधुनिक जीवन की जटिलताओं की अभिव्यक्ति। इस प्रकार आधुनिक कविता में भी अलंकार सक्रिय है, केवल उसका रूप परिवर्तित हुआ है। रेवाप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने इस तथ्य पर बल दिया है कि भारतीय काव्यशास्त्र को केवल प्राचीन ग्रन्थों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। उसकी अवधारणाएँ आधुनिक साहित्यिक चिन्तन में भी उपयोगी हैं।[5]

भारतीय काव्यशास्त्र की विकास-परम्परा में अलंकार सिद्धान्त का स्थान अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण है। काव्य की रमणीयता, प्रभावोत्पादकता तथा सौन्दर्य-वृद्धि के लिए अलंकारों का प्रयोग वैदिक साहित्य से ही दिखाई देता है। यद्यपि वेदों में "अलंकार" शब्द का व्यवस्थित काव्यशास्त्रीय प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि काव्यात्मक उपकरणों का प्रयोग व्यापक रूप से उपलब्ध है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण, उपमा एवं रूपकात्मक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उदाहरणार्थ अग्नि को देवताओं और मनुष्यों के मध्य दूत के रूप में प्रस्तुत करना रूपकात्मक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। यथा - अग्नि के लिए रूपक प्रयोग –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥[6]

यहाँ अग्नि को केवल भौतिक अग्नि नहीं माना गया है, वरन् उसे पुरोहित, ऋत्विज्, होता आदि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ अग्नि का मानवीकरण (Personification) तथा रूपकात्मक प्रयोग दिखाई देता है। अग्नि को यज्ञ के पुरोहित के रूप में कल्पित करना रूपक की आधारभूमि है। इसी प्रकार उषा (प्रभात) को मानवीकरण एवं रूपक देते हुए कहा गया है - उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।[7] उषा सूक्तों में प्रभात को एक सुन्दरी युवती के रूप में चित्रित किया गया है। उषा वस्त्र धारण करती है,आती है, संसार को जागृत करती है। यहाँ प्राकृतिक घटना का मानवीकरण हुआ है।उषा को नायिका के रूप में चित्रित करना संस्कृत काव्य में विकसित होने वाले रूपक एवं उत्प्रेक्षा की पूर्वभूमि है। इसी प्रकार सूर्य के लिए उपमा प्रयोग करते हुए कहा गया है – 'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।'[8]

यहाँ सूर्य को देवताओं के "नेत्र" के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सूर्य = चक्षु (नेत्र) यह रूपकात्मक प्रयोग है, जिसमें सूर्य को विश्व-दृष्टि प्रदान करने वाले तत्व के रूप में देखा गया है। ऋग्वेद के अश्व सूक्त में अश्व का वर्णन केवल घोड़े के रूप में नहीं है, वरन् उसमें सूर्य एवं ब्रह्माण्डीय शक्ति का प्रतीकात्मक

---

5 रेवाप्रसाद द्विवेदी, संस्कृत काव्यशास्त्र की भूमिका, वाराणसी, संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन

6 ऋग्वेद 1.1.1

7 ऋग्वेद 1.48.2

8 ऋग्वेद 1.115.1

अर्थ भी निहित है।[9] इस सूक्त में अश्व को तेज, गति और शक्ति का प्रतीक बनाया गया है। यह रूपकात्मक अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। वृत्र-वध[10] प्रसंग में इन्द्र को महान योद्धा, शक्ति और विजय के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। इन्द्र के लिए वृषभ (बल का प्रतीक), राजा, वीर जैसी उपमाओं का प्रयोग हुआ है। यहाँ उपमा और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दोनों दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में पृथ्वी और प्रकृति को माता के रूप में देखने की परम्परा वैदिक साहित्य में मिलती है।[11] यह रूपक आगे चलकर भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्रभावशाली बना। धीरे-धीरे काव्य में प्रयुक्त इन सौन्दर्यात्मक उपकरणों का सैद्धान्तिक विवेचन प्रारम्भ हुआ और अलंकार सिद्धान्त का विकास हुआ। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट आदि का विशेष योगदान माना जाता है। इन आचार्यों ने अलंकार को काव्य की विशिष्टता का आधार माना और यह स्थापित किया कि काव्य केवल अर्थ-प्रकाशन नहीं है, अपितु विशिष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम है।

भामह को अलंकार सम्प्रदाय का प्रथम व्यवस्थित आचार्य माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध कृति **"काव्यालंकार"** भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।भामह ने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा कि 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'[12] अर्थात् शब्द और अर्थ का समन्वित रूप काव्य है। किन्तु केवल शब्द और अर्थ का संयोग ही पर्याप्त नहीं है; उसमें अलंकार के द्वारा उत्पन्न सौन्दर्य आवश्यक है। इसी कारण भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया। उनका प्रसिद्ध उदाहरण **"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।"** यह स्पष्ट करता है कि अलंकार उनके लिए केवल बाहरी सजावट नहीं, अपितु काव्य के सौन्दर्य का मूल आधार है। भामह के यहाँ अलंकार का सम्बन्ध मुख्यतः **काव्य-चमत्कार** से है। वे मानते हैं कि साधारण कथन और काव्यात्मक कथन में अन्तर अलंकार के कारण उत्पन्न होता है। सामान्य रूप में कहा जाए तो सूर्य अस्त हो गया। इसी वाक्य को काव्यात्मक शैली में कहा जाए तो दिनकर पश्चिम दिशा की गोद में विश्राम करने चले गए। इस द्वितीय कथन में रूपकात्मकता और मानवीकरण के कारण सौन्दर्य उत्पन्न होता है।

आचार्य दण्डी की कृति **"काव्यादर्श"** अलंकार सिद्धान्त के विकास में दूसरा महत्वपूर्ण चरण है। दण्डी ने अलंकारों के साथ-साथ गुणों और दोषों का भी विवेचन किया। उनके अनुसार काव्य की शोभा अनेक तत्वों के समन्वय से उत्पन्न होती है। दण्डी ने कहा कि 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान्

---

9 ऋग्वेद 1.163

10 ऋग्वेद 1.32

11 ऋग्वेद 1.164.33

12 काव्यालंकार, 1.16

प्रचक्षते।'[13] अर्थात् काव्य की शोभा उत्पन्न करने वाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। दण्डी की विशेषता यह है कि उन्होंने अलंकार को व्यापक रूप प्रदान किया। उनके यहाँ अलंकार केवल शब्द-सौन्दर्य नहीं अपितु सम्पूर्ण काव्य-सौन्दर्य का साधन है। दण्डी ने स्वाभाविक सौन्दर्य और अलंकारिक सौन्दर्य दोनों को महत्व दिया। इस प्रकार उन्होंने अलंकार सिद्धान्त को अधिक विकसित रूप प्रदान किया।

इसी क्रम में उद्भट ने अलंकार सिद्धान्त को और अधिक विस्तार प्रदान किया। उन्होंने अलंकारों की संख्या बढ़ाई तथा उनके सूक्ष्म भेदों का विवेचन किया। उद्भट की दृष्टि में अलंकार काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने वाला तत्व है। उनके विचारों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का महत्व है। रुद्रट की कृति **"काव्यालंकार"** अलंकार परम्परा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रुद्रट ने अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने अलंकारों को केवल संख्या की दृष्टि से नहीं देखा, अपितु उनके प्रयोग और प्रभाव को भी महत्व दिया। रुद्रट के यहाँ अलंकार काव्य की रचनात्मक शक्ति है। 'अलंकारास्तु काव्यानां येषां शोभा प्रकाशते'[14] के माध्यम से आचार्य रुद्रट ने अलंकार को काव्य की शोभा एवं चमत्कार का कारण स्वीकार किया। उनके अनुसार अलंकार काव्य की अभिव्यक्ति को विशिष्ट बनाकर उसमें सौन्दर्य और प्रभाव उत्पन्न करता है। उन्होंने शब्द एवं अर्थ के आधार पर अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया।"

आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित **ध्वनि सिद्धान्त** ने भारतीय काव्यशास्त्र में एक नया मोड़ उत्पन्न किया। उनकी प्रसिद्ध कृति **"ध्वन्यालोक"** की प्रथम कारिका में ही कहा गया कि - काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः यः समाम्नात पूर्वः[15] अर्थात् ध्वनि काव्य की आत्मा है, जिसे पूर्व में ही विद्वानों ने कहा है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रभाव से अलंकार का स्थान कुछ सीमित हुआ। अब यह माना जाने लगा कि केवल अलंकार से श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं हो सकती, उसमें गहन भाव और व्यंजना आवश्यक है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि आनन्दवर्धन ने भी अलंकारों को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने ध्वनि के अन्तर्गत अलंकारों की भूमिका स्वीकार की। अर्थात् अलंकार काव्य की आत्मा न सही, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम अवश्य है।

अभिनवगुप्त ने रस सिद्धान्त को सर्वोच्च स्थान दिया। उनके अनुसार काव्य का परम उद्देश्य रसास्वादन है। किन्तु रस की अनुभूति भी भाषा और अभिव्यक्ति के माध्यम से ही सम्भव होती है। इस

13 काव्यादर्श, 2.1

14 काव्यालङ्कार, प्रथम परिच्छेद

15 ध्वन्यालोक 1.1

प्रक्रिया में अलंकार सहायक भूमिका निभाता है। इस प्रकार भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार कभी पूर्णतः अप्रासंगिक नहीं हुआ।

आचार्य मम्मट की कृति **"काव्यप्रकाश"** भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यन्त प्रभावशाली ग्रन्थ है। मम्मट ने विभिन्न सिद्धान्तों का समन्वय प्रस्तुत किया। उनके अनुसार दोषरहित शब्द और अर्थ, गुणों से युक्त, अलंकारों से सुशोभित काव्य की श्रेष्ठता के आधार हैं।[16] उन्होंने अलंकार को काव्य का अनिवार्य बाहरी तत्व नहीं माना, परन्तु उसकी उपयोगिता को स्वीकार किया।

आधुनिक आलोचना में अलंकार को नए दृष्टिकोण से देखा गया है। आधुनिक भाषाविज्ञान और साहित्य सिद्धान्तों ने यह स्पष्ट किया कि भाषा स्वयं रचनात्मक प्रक्रिया है। आधुनिक आलोचक मानते हैं कि प्रतीक अलंकार का विकसित रूप है। बिम्ब अलंकारिक चेतना का परिणाम है। रूपक आधुनिक साहित्य की मूल संरचना है। इस दृष्टि से अलंकार पुनः महत्वपूर्ण हो जाता है। रेवाप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत काव्यशास्त्र को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनकी दृष्टि में काव्यशास्त्र केवल प्राचीन नियमों का संग्रह नहीं है, अपितु साहित्य को समझने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। वे अलंकार को काव्य की अभिव्यक्ति-शक्ति से जोड़ते हैं। उनके अनुसार अलंकार भाषा में नवीनता उत्पन्न करता है। अर्थ की गहराई बढ़ाता है। कवि की कल्पना को मूर्त रूप देता है। इस प्रकार अलंकार केवल "भूषण" नहीं अपितु काव्य-सृजन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। रेवाप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत काव्यशास्त्र को केवल ऐतिहासिक सिद्धान्तों का संग्रह न मानकर साहित्यिक अभिव्यक्ति के वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा के रूप में देखा है। उनके काव्यशास्त्रीय चिन्तन में अलंकार भाषा की सृजनात्मक शक्ति, अर्थ-विस्तार एवं काव्य-सौन्दर्य का प्रमुख साधन है।[17]

राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र को आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की है। उनकी दृष्टि में संस्कृत काव्यशास्त्र एक जीवन्त परम्परा है, जो वर्तमान साहित्यिक विमर्श में भी उपयोगी है। वे मानते हैं कि भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों को केवल ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं अपितु आधुनिक साहित्य की व्याख्या के साधन के रूप में भी देखा जाना चाहिए। अलंकार के संदर्भ में उनकी दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि अलंकार काव्य की अर्थ-निर्माण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है।[18]

---

16 तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

17 रेवाप्रसाद द्विवेदी, संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, वाराणसी : कालिदास संस्थान, 2018, अलंकार-सम्प्रदाय सम्बन्धी विवेचन।

18 राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा, नई दिल्ली

आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को केवल प्राचीन ग्रन्थों एवं सिद्धान्तों का विषय न मानकर उसे आधुनिक साहित्यिक चिन्तन से जोड़ा। उनके अनुसार भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा एक जीवित परम्परा है, जिसमें समय के अनुसार नवीन व्याख्याओं की सम्भावना विद्यमान है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में अलंकार को लेकर जो मतभेद दिखाई देते हैं, उनका समाधान द्विवेदी जी समन्वयात्मक दृष्टि से करते हैं। उनके अनुसार अलंकार को केवल "काव्य का आभूषण" मानना उसके वास्तविक स्वरूप को सीमित कर देना है। अलंकार वस्तुतः कवि की रचनात्मक चेतना का वह माध्यम है जिसके द्वारा सामान्य अनुभव सौन्दर्यात्मक अनुभूति में परिवर्तित हो जाता है।[19] द्विवेदी जी की दृष्टि में काव्य की सार्थकता केवल विषय-वस्तु में नहीं होती, अपितु उसकी अभिव्यक्ति-पद्धति में भी होती है। यही अभिव्यक्ति-पद्धति अलंकारों के माध्यम से प्रभावशाली बनती है।

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार की सामान्य परिभाषा काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्व के रूप में की जाती है। किन्तु आधुनिक दृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि अलंकार केवल शोभा-वर्धक है अथवा अर्थ-सृजन का भी माध्यम है। रेवाप्रसाद द्विवेदी के अनुसार अलंकार अभिव्यक्ति की विशिष्टता है। कवि जब किसी अनुभूति को सामान्य भाषा से अलग विशेष ढंग से व्यक्त करता है, तब अलंकार की सृष्टि होती है। इसलिए अलंकार भाषा की रचनात्मक शक्ति का प्रतीक है। अलंकार कल्पना का सौन्दर्यात्मक रूप है। काव्य में कल्पना का अत्यन्त महत्व है। कवि अपनी कल्पना द्वारा सामान्य वस्तुओं में असाधारण सौन्दर्य देखता है। कालिदास के मेघदूत में मेघ को दूत के रूप में प्रस्तुत करना इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। मेघ केवल जल से भरा बादल नहीं रह जाता, अपितु वह विरही यक्ष का संदेशवाहक बन जाता है।[20] यहाँ रूपकात्मक कल्पना के माध्यम से निर्जीव वस्तु में जीवन का संचार किया गया है। अलंकार केवल शब्दों की सजावट नहीं करता, अपितु अर्थ को गहन बनाता है। अर्थात् अलंकार अर्थ-गाम्भीर्य का साधन है। जैसे कहा जाए कि जीवन एक यात्रा है। यह रूपक केवल कथन नहीं है, अपितु जीवन के सम्पूर्ण दर्शन को एक छोटे वाक्य में व्यक्त कर देता है। अतः रूपक जैसे अलंकार आधुनिक दार्शनिक एवं साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्य की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। काव्य-सौन्दर्य केवल बाहरी आकर्षण नहीं, अपितु भाव, विचार और अभिव्यक्ति के समन्वय से उत्पन्न होता है। रेवाप्रसाद द्विवेदी की

---

19 रेवाप्रसाद द्विवेदी, संस्कृत काव्यशास्त्र की भूमिका, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन

20 मेघदूत

दृष्टि में अलंकार इसी सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। काव्य में सौन्दर्य तीन स्तरों पर दिखाई देता है –

1. **शब्द-सौन्दर्य** - जब ध्वनि, लय और शब्द-विन्यास से सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वहाँ शब्दालंकारों की भूमिका होती है। जैसे - अनुप्रास, यमक, श्लेष

2. **अर्थ-सौन्दर्य** – जब नवीन अर्थ, कल्पना और भाव-गहनता उत्पन्न होती है, वहाँ अर्थालंकारों का महत्व होता है। जैसे – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि।

3. **भाव-सौन्दर्य** – जब अलंकार भावों को अधिक प्रभावशाली बना देता है, तब वह काव्यानुभूति का माध्यम बन जाता है।

इस दृष्टि से अलंकार काव्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों सौन्दर्य को प्रभावित करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह रहा है कि काव्य की आत्मा अलंकार है अथवा ध्वनि। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना किन्तु आधुनिक दृष्टि से दोनों सिद्धान्तों में विरोध स्थापित करना उचित नहीं है। रेवाप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में ध्वनि और अलंकार परस्पर विरोधी नहीं हैं। अनेक बार अलंकार ही ध्वनि को प्रभावी बनाता है। जैसे किसी कविता में प्रयुक्त रूपक केवल सौन्दर्य नहीं उत्पन्न करता, अपितु गहन व्यंजना को भी व्यक्त करता है। इस प्रकार अलंकार ध्वनि का साधन बन सकता है।

आधुनिक साहित्यिक सिद्धान्तों में भाषा को केवल सूचना देने का माध्यम नहीं माना जाता, अपितु उसे सृजनात्मक शक्ति के रूप में देखा जाता है। आधुनिक आलोचना के अनुसार भाषा का विचलन (deviation), प्रतीकात्मकता, बिम्ब निर्माण, बहुअर्थता आदि काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। ये सभी प्रक्रियाएँ मूलतः अलंकारिक चेतना से जुड़ी हुई हैं। इसलिए आधुनिक साहित्य में भी अलंकार की उपस्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। रेवाप्रसाद द्विवेदी के विचारों के आधार पर अलंकार की पुनर्प्रतिष्ठा को निम्न रूप में समझा जा सकता है अलंकार काव्य की रचनात्मक शक्ति है। कवि जब नवीन दृष्टि से संसार को देखता है, तब अलंकार उत्पन्न होता है। अलंकार अर्थ-निर्माण करता है। यह केवल सजावट नहीं अपितु अर्थ को नवीन आयाम देता है। अलंकार परम्परा और आधुनिकता का सेतु है। प्राचीन संस्कृत काव्य से लेकर आधुनिक कविता तक अलंकार अपनी उपयोगिता बनाए हुए है। अलंकार कवि-प्रतिभा का प्रमाण है। श्रेष्ठ अलंकार वही है जो कृत्रिम न होकर सहज रूप से काव्य में उपस्थित हो। रेवाप्रसाद द्विवेदी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को संग्रहालय की वस्तु बनने से बचाया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं। अलंकार आधुनिक साहित्य को समझने का प्रभावी उपकरण है। काव्य की आत्मा केवल किसी एक सिद्धान्त में सीमित नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से उनका चिन्तन समन्वयवादी एवं आधुनिक है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्रीय चिन्तन के क्षेत्र में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने संस्कृत साहित्य, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र तथा भारतीय साहित्यिक परम्परा के अध्ययन को आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की है। उनका साहित्यिक चिन्तन परम्परा और आधुनिकता के मध्य एक सृजनात्मक संवाद स्थापित करता है। राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार संस्कृत काव्यशास्त्र केवल प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित नियमों का संग्रह नहीं है, अपितु वह भारतीय साहित्यिक चेतना का सैद्धान्तिक स्वरूप है। इसमें काव्य की अनुभूति, भाषा की शक्ति, सौन्दर्य-बोध और सृजनात्मक प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है।[21] उनकी दृष्टि में भारतीय काव्यशास्त्र की विशेषता यह है कि उसने काव्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना, अपितु उसे मानव-अनुभूति के सूक्ष्मतम स्तरों की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार किया।

राधावल्लभ त्रिपाठी के साहित्यिक चिन्तन में काव्य और काव्यशास्त्र के मध्य गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। उनके अनुसार काव्यशास्त्र केवल काव्य के बाहरी स्वरूप का विश्लेषण नहीं करता, अपितु वह काव्य की आन्तरिक संरचना एवं सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है। काव्य की रचना में तीन प्रमुख तत्वों की भूमिका होती है –

1. कवि की प्रतिभा
2. भाषा की अभिव्यक्ति-शक्ति
3. सौन्दर्यात्मक अनुभूति

अलंकार इन तीनों को जोड़ने वाला माध्यम है। कवि की कल्पना जब भाषा के माध्यम से विशेष रूप ग्रहण करती है, तब अलंकार का जन्म होता है। इसलिए अलंकार केवल शब्दों की सजावट नहीं है, अपितु वह कवि की सृज नात्मक चेतना का परिणाम है। परम्परागत काव्यशास्त्र में अलंकार को मुख्यतः काव्य की शोभा बढ़ाने वाला तत्व माना गया। किन्तु आधुनिक अध्ययन में इसका क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। उन्होंने अलंकार को ही काव्यजीवन माना है।[22] यद्यपि आलंकारिकों के चिन्तन में भी अलंकार की व्यापक अवधारणा थी किन्तु उसके भूषण और वारण अर्थ से ही वे परिचित थे। अलंकार को पर्याप्ति

---

21 राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा, नई दिल्ली

22 अलङ्कारः काव्यजीवनम्। 2.1.1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र

अर्थ तक ले जाने वाले प्रथम आचार्य त्रिपाठी ही हैं। दण्डी[23] एवं धनञ्जय[24] ने भी अलंकार में नूतन सौन्दर्य देखने का प्रयास किया था।

राधावल्लभ त्रिपाठी की दृष्टि में संस्कृत काव्यशास्त्र की विभिन्न धाराएँ एक-दूसरे की विरोधी नहीं हैं, अपितु वे काव्य के अलग-अलग पक्षों को स्पष्ट करती हैं। इस दृष्टि से अलंकार अभिव्यक्ति का सौन्दर्य, रीति शैली का वैशिष्ट्य, ध्वनि व्यंजना की शक्ति, रस अनुभूति की चरम अवस्था तथा वक्रोक्ति →कथन की विशिष्टता ये सभी काव्य के विभिन्न आयाम हैं। अतः अलंकार को ध्वनि या रस के विरोध में नहीं देखा जाना चाहिए।

राधावल्लभ त्रिपाठी के साहित्यिक चिन्तन के आधार पर अलंकार की पुनर्प्रतिष्ठा की गयी है। उनके अनुसार अलंकार काव्य की जीवंत प्रक्रिया है। अलंकार किसी निश्चित समय की वस्तु नहीं है। यह प्रत्येक युग के साहित्य में नवीन रूपों में उपस्थित रहता है। अलंकार भाषा को रचनात्मक बनाता है। साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा से इसलिए भिन्न होती है क्योंकि उसमें अर्थ की नवीन सम्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। अलंकार पाठक की अनुभूति को प्रभावित करता है। काव्य का उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, अपितु अनुभूति उत्पन्न करना है। अलंकार इस अनुभूति को तीव्र करता है। अलंकार परम्परा और आधुनिकता के बीच सेतु है।

आधुनिक साहित्यिक चिन्तन में यह धारणा विकसित हुई कि अलंकार केवल संस्कृत काव्यशास्त्र की पारम्परिक अवधारणा है और आधुनिक साहित्य में उसकी उपयोगिता सीमित है। किन्तु गम्भीर साहित्यिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक कविता, कथा और नाटक में भी अलंकार अपनी परिवर्तित संरचना के साथ विद्यमान है। आधुनिक युग में साहित्य की भाषा सामान्य संप्रेषण की भाषा से भिन्न होती है। कवि जब किसी अनुभूति को नवीन रूप में प्रस्तुत करता है, तब भाषा में विशिष्टता उत्पन्न होती है। यही विशिष्टता अलंकार की मूल भूमि है। इस दृष्टि से अलंकार आधुनिक साहित्य में निम्न रूपों में दिखाई देता है –

1. प्रतीकात्मकता
2. बिम्ब विधान

---

23 यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः॥ काव्यादर्श, 2.367

24 षट्त्रिंशद् भूषणादि सामदीन्येकविंशतिः।
लक्षणसन्ध्यन्तराङ्गानि सालङ्कारेषु तेषु च॥ दशरूपक 4.84

3. रूपकात्मक अभिव्यक्ति
4. व्यंग्यार्थ
5. विरोधाभासी अभिव्यक्ति

अतः आधुनिक साहित्य में अलंकार समाप्त नहीं हुआ है, अपितु उसने नवीन रूप ग्रहण किया है। आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं राधावल्लभ त्रिपाठी दोनों ने भारतीय काव्यशास्त्र को नवीन दृष्टि प्रदान की है। रेवाप्रसाद द्विवेदी अलंकार को काव्यशास्त्र को जीवित परम्परा मानते हैं। अलंकार को अभिव्यक्ति की शक्ति के रूप में देखते हैं। परम्परागत सिद्धान्तों की आधुनिक उपयोगिता पर बल देते हैं। अलंकार को केवल बाह्य सजावट नहीं मानते। राधावल्लभ संस्कृत काव्यशास्त्र को व्यापक साहित्यिक परम्परा के रूप में देखते हैं। अलंकार को भाषा और अर्थ के सौन्दर्य से जोड़ते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के समन्वयवादी स्वरूप को महत्व देते हैं। आधुनिक साहित्यिक आलोचना में इसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार दोनों विद्वानों की दृष्टि में अलंकार काव्य की रचनात्मक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में अलंकार सिद्धान्त का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यद्यपि समय-समय पर ध्वनि, रस और अन्य सिद्धान्तों के प्रभाव से अलंकार की प्रधानता पर प्रश्न उठे, तथापि उसकी उपयोगिता कभी समाप्त नहीं हुई। आचार्य भामह ने जिस अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया था, उसका आधुनिक पुनर्पाठ यह स्पष्ट करता है कि अलंकार केवल बाहरी सजावट नहीं है। वह कवि की कल्पना, भाषा की रचनात्मकता और अर्थ की गहनता का माध्यम है। रेवाप्रसाद द्विवेदी और राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे आधुनिक विद्वानों ने यह सिद्ध किया कि भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त आज भी साहित्यिक अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं। इनके विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक काव्यशास्त्र में अलंकार पुनः काव्य की रचनात्मक आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होने की क्षमता रखता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य का केवल भूषण नहीं, अपितु उसकी अभिव्यक्ति-शक्ति, सौन्दर्य-चेतना और अर्थ-विस्तार का मूल आधार है। वर्तमान समय में रेवा प्रसाद द्विवेदी एवं राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे काव्यशास्त्रियों द्वारा पुनः अलंकार को काव्यात्मा के रूप में स्थापित करने का श्लाघ्नीय प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेदसंहिता, सोनटक्के, एन, एस, तथा काशीकर, सी, जी, (सम्पा,), वैदिक संशोधन मण्डल, 1933–1951,
2. भामह, काव्यालंकार, सम्पा. पी. वी. काणे, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रित संस्करण, 1990
3. दण्डी, काव्यादर्श, सम्पा. रंगाचार्य, दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, 1998
4. उद्भट काव्यालंकारसारसंग्रह, सम्पा. पी. वी. काणे, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1990
5. रुद्रट, काव्यालंकार, सम्पा. सत्यव्रत सिंह, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, 2004
6. आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक (लोचन-टीका सहित) सम्पा. सत्यदेव चौधरी, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2012
7. अभिनवगुप्त, अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र-टीका), सम्पा. मधुसूदन शास्त्री, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1998
8. मम्मट, काव्यप्रकाश, सम्पा. सत्यव्रत सिंह, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2017
9. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, सम्पा. सत्यव्रत सिंह, वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2016
10. कुन्तक, वक्रोक्तिजीवितम्, सम्पा. सुशील कुमार डे, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1985
11. वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, सम्पा. पी. वी. काणे, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1990
12. द्विवेदी, रेवाप्रसाद, संस्कृत काव्यशास्त्र की भूमिका, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2018
13. द्विवेदी, रेवाप्रसाद, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2018
14. त्रिपाठी, राधावल्लभ, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा, नई दिल्ली: डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 2013
15. त्रिपाठी, राधावल्लभ, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, नई दिल्ली: डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 2011
16. जगन्नाथ पण्डितराज, रसगंगाधर, सम्पा. बद्रीनाथ झा, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2013
17. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, सम्पा. रामकृष्ण कवि, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015
18. त्रिपाठी, राधावल्लभ, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, सम्पा. रमाकान्त पाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009

19.द्विवेदी, रेवाप्रसाद। काव्यालंकारकारिका। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1997
20. द्विवेदी, रेवाप्रसाद। अलं ब्रह्म। वाराणसी: चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, 2018